Volume: 5 Issue: 4 Pages: 141-144

भारतीय परिस्थिति में अस्तित्ववादी दर्शन की शैक्षिक उपादेयता

[*1] डॉ. सुरेन्द्र प्रताप

[*1] सहायक प्रोफ़ेसर, शिक्षा संकाय. बी.एड. म०प्र०राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय हरदोई, उत्तर प्रदेश, भारत

Article Info.
E-ISSN: 2583-6528
Impact Factor (QJIF): 8.4
Peer Reviewed Journal
Available online:
www.alladvancejournal.com

Received: 15/March/2026
Accepted: 20/April/2026

***Corresponding Author**
डॉ. सुरेन्द्र प्रताप
सहायक प्रोफ़ेसर, शिक्षा संकाय. बी.एड.
म०प्र०राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
हरदोई, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
अस्तित्ववादी विधारधारा के अनुसार मानव अनुभूति करने में सक्षम है। वह जो बनना चाहता है, बन ही जाता है। उसमें क्षमता है, वह स्वतंत्र है। वह जिस रूप में अपने को देखना चाहता है, उसको देखने की क्षमता रखता है। मनुष्य अपने अनुकूल क्रियाओं को चयन भी स्वयं करता है। शिक्षा का लक्ष्य उसे इस योग्य बनाने का होना चाहिये कि वह अपने मूल्यों का चयन कर सके। शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति आत्मविश्वासी बनने का अवसर पायेगा। यद्यपि कुछ दार्शनिक, शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा में स्वतंत्रता, प्रामाणिक अस्तित्व, वैयक्तिकता, चयन शक्ति आदि के आधार पर अस्तित्ववादी शैक्षिक उपयोगिता को स्वीकार करने में आपत्ति की और कहा कि अस्तित्ववादी शैक्षिक, उपयोगिता को स्वीकार करने में आपत्ति की और कहा कि अस्तित्ववादी सिध्दान्तों को शिक्षा में लागू नहीं किया जा सकता। लेकिन आधुनिक शैक्षिक युग में इसे नकारा नहीं जा सकता। प्रत्येक बालक अपनी योग्यताओं, क्षमताओं, रूचि एवं अभिवृत्तियो में अद्वितीय होता है। अतः शिक्षा का परम लक्ष्य होना चाहिये कि प्रत्येक बालक को अपने गुणों व सम्भावनाओं को विकसित करने का अवसर मिले।

मुख्य शब्द: भारतीय परिस्थिति, अस्तित्ववादी दर्शन, शैक्षिक

प्रस्तावना:

भारत देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् राष्ट्रीय आर्थिक व सामाजिक स्थिति में परिवर्तन दिखाई देने लगा। राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली में भी परिवर्तन की बात उठी। शैक्षिक प्रगति के लिये भारत सरकार ने समय-समय पर आयोग बैठाये, संसाधन उपलब्ध कराये तथा शिक्षा-समस्या के समाधान हेतु समीक्षा करवाई। लेकिन दुर्भाग्यवश हमारी शिक्षा अभी तक राष्ट्रोपयोगी नहीं बन पाई है। इसका कारण है कि एक विश्द शिक्षा-दर्शन के अभाव में हम निश्चित लक्ष्य, निश्चित पाठ्यक्रम एवं कोई निश्चित शैक्षिक प्रक्रिया निर्धारित नही कर पायें है। आज आवश्यकता है एक ऐसे शिक्षा-दर्शन की जो मानव अस्तित्व के प्रति न्याय कर सके। उसके भौतिक, मानसिक, नैतिक, शारिरिक तथा व्यावहारिक अस्तित्व के रूपों के प्रति न्याय कर सके। आज शिक्षा के क्षेत्र में नये प्रयोग किये जा रहे हैं। राष्ट्र की समस्या के समाधान हेतु शिक्षाविद् सतत् प्रयत्नशील हैं। लेकिन मात्र साक्षरता हमारी समस्याओं का उन्मूलन नहीं है। आज आवश्यकता है भारतीयों को मानसिक रूप से स्वतंत्र निर्णयों को लेने की क्षमता को विकसित कराने की। इसका प्रत्यारोपण बाल्यकाल से होना चाहिये। बालक को ज्ञान-बोध आज राष्ट्रीय शिक्षा की पहली आवश्यकता है।

भारत में इस बीच प्रतिमानों के परिवर्तन का दौर है। समाज सुधारकों, शिक्षा-विदों तथा राजनीतिज्ञों ने शिक्षा-व्यवसाय को नया रूप देने का प्रयास किया है। आज इसके फलस्वरूप भारत के समस्त प्रबुध्द नागरिक वर्तमान समाज को व्यवसायोन्मुख देखना चाहते हैं। स्पष्ट है कि व्यवसाय विहीन शिक्षा आज के युग में निरर्थक साबित हो चुकी है। लेकिन यह चिंतन एंकागी है। शिक्षा का एक लक्ष्य व्यवससय हो सकता है लेकिन केवल व्यवसाय नहीं। साथ ही शिक्षा या शिक्षक व्यवसायी-शिक्षा तो दे सकते हैं लेकिन योग्यतानुकूल व्यवसाय अथवा जीविका उपलब्ध कराना उनका क्षेत्र नहीं। इस दिशा में तो समाज, सरकार तथा राज्य ही प्रयत्न कर सकते हैं। आधुनिक शिक्षा व्यवसाय नहीं दे सकती। अब प्रश्न उठता है कि क्या यह प्रणाली निरर्थक है ? क्या इसे समाप्त कर देना चाहिए? क्या शिक्षा वही है कि जो व्यवसाय में लगा सके? ये समकालीन दार्शनिक चिंतन अभी भी गंभीर चिंतन से अछुत रहे है। अतिशय जनसंख्या वृध्दि एवं रोजगार की कमी ने शिक्षा को व्यवसायोन्मुख बनाने की कोरी कल्पना को बलात् साकार करने का अभिनव प्रयास किया है। विज्ञान के द्वारा आज प्रगति तीव्र हुई है। उसे प्रधान तो माना जा सकता है लेकिन सर्वस्व नहीं। उन्नत समाज निर्माण के लिये व्यक्ति

को यह बताना आवश्यक है कि अर्थ से बिस्तर तो प्राप्त हो सकता है लेकिन नींद नहीं खरीदी जा सकती। पैसे से पुस्तक मिल सकती है परन्तु ज्ञान नहीं मिल सकता। पैसे भोजन खरीदा जा सकता है, भूख नहीं। पैसे से औषधि मिल सकती है लेकिन स्वास्थ नहीं नहीं। पैसे से मनोरंजन और आनंद खरीदा जा सकता है लेकिन सुख और शांन्ति नहीं। वस्तुतः राष्ट्रीय प्रगति में सर्वांगीण विकास की विचारधारा निहित है न कि मात्र आर्थिक प्रगति की। स्पष्ट है कि समकालीन शिक्षा व्यक्ति को स्वतंत्र चिंतन तथा समस्याओं के समाधान हेतु तैयार करने में अक्षम है।

सम्पूर्ण राष्ट्र में एक समान शिक्षा का प्रारूप चिर प्रतीक्षित है। यह विडम्बना ही कही जाएगी कि अनेक समृध्द दर्शनों के रहते हुये भी हमारा राष्ट्रीय शिक्षा-दर्शन एक सुदृढ़ नींव की तलाश में है। शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप के विषय में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा था-

मानव-प्रकृति

आज मानव के लिये भौतिकता तथा आध्यात्म के बीच समन्वय आवश्यक है। आज समय की मांग है विश्व में भौतिकता की। ऐसी भौतिकता की जिसमें समस्त मानवता वास कर सके। आज का मानव आदर्शवादी सिध्दान्तों से अलग यथार्थ के व्यावहारिक सत्यों के अन्वेषण में लगा है। वह केवल आध्यात्म के योग में ही नहीं खोना चाहता वरन् यथार्थवादी भी होना चाहता है।

आज विद्यार्थी को बाल केन्द्रीय शिक्षा देने की बात की जाती है। उसकी शिक्षा को निश्चित करने से पूर्व मानव-स्वभाव के सभी तथ्यों के महत्व को स्वीकारना आवश्यक है, सहज मूल-प्रवृत्तियो के विकास को मान्यता देना आवश्यक है। विद्यार्थी समाज की एक इकाई भी है। अतः उसे मानसिक स्वतंन्त्रता प्रदान करना भी आवश्यक है जिससे वह समाज में रह कर अपनी सहज प्रवृत्तियो का उचित विकास कर सके। संक्षेप में यह मानकर चला जा सकता है कि मानव भौतिकवादी परिवेश में स्वतंत्र रूप से सांस लेता हुआ, अभ्युदय की कामना करता हुआ, प्रत्येक व्यक्ति के स्वतंत्र विचार और सभी के स्वतंत्र विकास में योगदान देता रहे। निश्चय ही यही विचार सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति का मार्ग प्रशस्त करेंगे।

माक्र्स ने लिखा है कि बाह्य जगत् में क्रियाशील होकर जगत् को बदलकर मनुष्य स्वयं अपने स्वभाव को बदलता है।

भारत का शिक्षा-दर्शन भविष्य में उस मान्यता पर आधारित होना चाहिये जिसमें मानव पूर्णरूप से स्वतंत्र हो। मानव जो कुछ है उसका कारण उसी में विद्यमान है और यही उसके स्वभाव का अर्थ है। उसकी अपनी सहज प्रवृत्तियो, झुकावों और संवेगों द्वारा अर्पित जीवन का निषेध संभ नहीं है। काण्ट ने कहा था- ''मानव तात्विक रूप से स्वतंत्र किन्तु व्यावहारिक रूप से परतंत्र है। ''लेकिन उसकी परतन्त्रता का परिणाम उसका अस्तित्व है जो भावी अस्तित्व में बाधक नहीं बन सकता है।

अस्तित्ववाद को शिक्षा में अगर पूर्णरूप से लागू नहीं किया जा सकता तो पूर्णरूप से नकारा भी नहीं जा सकता। अस्तित्ववाद ने एक ऐसे मानव की कल्पना की है जो अपने अस्तित्व के लिये सतत् संघर्षशील है तथा स्वतंत्र रहकर अपने अस्तित्व की जीवन्त रखना चाहता है। प्रायः निराशावाद को अस्तित्ववाद का जन्मदाता कहा जाता है। लेकिन परिणाम अस्तित्व में जीने का चयन ही अस्तित्ववादियों ने किया है। फिर यह निराशावादी कैसे हो सकता है? आज की भावना में जो लोग सोचते हैं वह कह नहीं पाते हैं। उसे कहने का साहस अस्तित्वाद ने किया है। ''बैंड-फेथ, हीन-श्रध्दा का वरण अधिकतर मानव किये हुये है'' यह सर्वप्रथम अस्तित्ववादियों ने कहा। उनका विचार था कि मानव कृत्रिमता से जीने की अवेहलना करे तथा वास्तविक आरचार का वरण करे। तुम अपनी नियति स्वयं संभालों। सात्र्र ने भी मानव को स्वयं अपनी नियति संभालने की बात की है। इस कथनों से स्पष्ट है कि मानव के विकास में शिक्षा का कहीं विरोध नहीं है वरन् मनुष्य का उत्तरदायित्व इस विकास-श्रृंखला में अत्यधिक बढ़ जाता है। मानव-जीवन में आने वाली समस्याओं के प्रति उदासीन नहीं है क्योंकि वह स्वयं चयनकर्ता है। अतः उसे पीड़ा और संदेह की स्थिति में भी पूर्णरूप से तथा वास्तविक आचरण के साथ जीना होगा। इन्ही के आधार पर अस्तित्वाद की वर्तमान शिक्षा में उपादेयता है।

शिक्षा की अवधारणा

शिक्षा का नवीन स्वरूप सृजनात्मक वृत्तियो पर मूर्त एवं सुन्दर तथा सरल मानव के निर्माण की प्रवृत्ति पर आधारित होना चाहिए। भारतीय शिक्षा का यह स्वरूप नहीं होना चाहिये कि व्यक्ति केवल विद्वान बने। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा द्वारा मनुष्य की सृजनात्मक को बढ़ावा मिले। उसे इस संघर्षमय वातावरण में अपने अस्तित्व को पहचानने की स्वतंत्रता हो। इस मार्ग पर चल कर ही शिखा व्यक्ति में स्वस्थ मानसिकता का विकास करा सकती है। स्वस्थ मानसिकता व्यक्ति के स्वस्थ व्यवहार की परिचायक होती है। अतः शिक्षा का दूसरा नाम व्यवहार का परिमार्जन होना चाहिये।

भारतीय शैक्षिक विचारधारा प्राचीनकाल से ही समृध्द तथा व्यावहरिक थी। प्राचीन शिक्षा-दार्शनिकों ने इसे वह आधार प्रदान किया जो प्रगतिशील था तथा समयानुसार अन्य शिक्षाधाराओं को अपने में आत्मसात करने की क्षमता रखता था। आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, प्रयोजनवाद, मानवतावाद तथा यथार्थवाद आदि अनेक शिक्षा-दर्शन की धाराओं के अनुसार समय-समय पर अपना रूप परिवर्तित करते हुये तथा उन दर्शनों के उपयोगी विचारों से सम्पृक्त होते हुये शिक्षा का अबाध विकास होता रहा। इतना ही नहीं बल्कि पश्चिमी दर्शनों एवं आधुनिक विज्ञान के नवीन तत्वों को आत्मसात् करके शैक्षिक स्वरूप अत्यन्त समृध्द भी हुआ। लेकिन कुछ समय पश्चात् शैक्षिक स्वरूप में एक भटकाव की स्थिति आ गई। शिक्षा-दर्शन की अनवरत धारा ने अपनी दिशा बदल दी तथा वह अपना औचित्य आ गई। शिक्षा-दर्शन की अनवरत धारा ने अपनी दिशा बदल दी तथा वह अपना औचित्य खो बैठा।

समस्त राष्ट्रीय आयोग, शिक्षा-नीतियों, पाठ्यक्रम, परिक्षा, राष्ट्रीय समितियां तथा शिक्षा-सिध्दान्त भी शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन नहीं आ सके।

आज की स्थिति अत्यन्त भयावह है। शिक्षा ने व्यक्ति को नैराश्य के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। विद्यार्थियों के जीवन से आत्मनिर्भरता उठ गई है। स्वावलम्बन एक सपना हो गया है। आज आवश्यकता महसूस की जा रही है शिक्षा पध्दति तथा शैक्षिक स्वरूप के आमूल-चूल परिवर्तन की।

हमारी नवीन शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिये जिससे मानव स्वतंत्र रूप से देश के विकास में सहयोग दे सके। आत्मविश्वासी बन सके तथा जा वह बनना चाहता है, उसे बनने की पूर्ण स्वतंत्रता हो। वह अपने को जिस रूप में ढालना चाहता है, उस रूप में ढाल सके। वह स्वयं अपना चयनकर्ता हो तथा अपनी सफलताओं का स्वयं जिम्मेदार।

विशालयी शिक्षा की अवधि निर्धारित हो तथा वह बाहरी प्रभावों से मुक्त हो। इन विद्यालयों से निकला बालक हर तरीके से राष्ट्र का कर्णधार बन सकता है।

शैक्षिक उद्देश्य

हमारी शिक्षा नीति में वर्णित है-

''शिक्षा की नीति बनाने के काम की शुरूआत शिक्षा का सही लक्ष्य पहचानने से जानी चाहिये और ऐसा करने के बाद अतीत के अनुभवों का सटीक मूल्यांकन करते हुये वर्तमना परिस्थितियों की ओर बढ़ना चाहिए। इसके लिये सुविधा प्रदान करने वाले कारणों के मूल्यांकन के साथ-साथ उन बाधाओं का भी पता लगाना होगा जो यथार्थवादी

कारणों के मूल्यांकन के साथ-साथ उन बाधाओं का भी पता लगाना होगा जो यथार्थादी नीति तैयार करने के लिये वातावरण संबंधी परिस्थितियां बनाते है।

शिक्षा का लक्ष्य मानव-जीवन के अंदर ही निहीज है और वह मानव को दिशा निर्देश कराता है। वर्तमान शिक्षा का उद्देश्य ''सा विद्या या विमुक्तये'' है। 'मुक्ति' का यहां क्या तात्पर्य है यह स्पष्ट नहीं किया गया है। 'मुक्ति' का तात्पर्य प्रायः आत्मा की मुक्ति से लगाया जाता है। लेकिन आत्मा मानव-जीवन मे रहते हुये भी तो मुक्ति-प्राप्त कर सकती है। मानव अस्तित्व तथा सामाजिक जीवन के संदर्भ में इसका स्पष्ट निरूपण किया गया है। अतः शिक्षा का उद्देश्य जीवन के प्रत्येक संबंध में मुक्ति की अथवा स्वतंत्रता की खोज करना होगा।

शिक्षा का लक्ष्य मानसिक दासता से मुक्ति दिलाना तथा स्वतंत्रत चिंतन शक्ति का विकास करना होना चाहिये। आज विद्यार्थी स्वतंत्र चिंतन के अभाव में जी रहा है। वह वही सोचता है जो उसे सोचने पर मजबूर किया जाता है। वह, वह नहीं सोच पाता जो उसे सोचना चाहिये। विद्यार्थी में बिना किसी बाह्य प्रभाव के, स्वतंत्र रूप से तथा विवेक के साथ निर्णय लेने की योग्यता होनी चाहिये।

मौलिक चिंतन वह है जिसमें मनुष्य मानसिक स्वतंत्रता के बल पर तार्किक दृष्टिकोण से अपनी समस्याओं का स्वयं समाधान खोजता है तथा जीवन की तैयारी हेतु आगे बढ़ता है। आज हमारी संस्कृति अनेक सांस्कृतिक आक्रमणों से भयाक्रान्त है। विवेक सम्मत चिंतन द्वारा ही व्यक्ति अपने दृष्टिकोण से प्राचीन संस्कृति के मूल्यों को समझेगा तथा उसे स्थायित्व प्रदान करने हेतु प्रयासरत् रहेगा।

अस्तित्ववादी विधारधारा के अनुसार मानव अनुभूति करने में सक्षम है। वह जो बनना चाहता है, बन ही जाता है। उसमें क्षमता है, वह स्वतंत्र है। वह जिस रूप में अपने को देखना चाहता है, उसको देखने की क्षमता रखता है। मनुष्य अपने अनुकूल क्रियाओं को चयन भी स्वयं करता है। शिक्षा का लक्ष्य उसे इस योग्य बनाने का होना चाहिये कि वह अपने मूल्यों का चयन कर सके। शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति आत्मविश्वासी बनने का अवसर पायेगा। यद्यपि कुछ दार्शनिक, शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा में स्वतंत्रता, प्रामाणिक अस्तित्व, वैयक्तिकता, चयन शक्ति आदि के आधार पर अस्तित्ववादी शैक्षिक उपयोगिता को स्वीकार करने में आपत्ति की और कहा कि अस्तित्ववादी शैक्षिक, उपयोगिता को स्वीकार करने में आपत्ति की और कहा कि अस्तित्ववादी सिध्दान्तों को शिक्षा में लागू नहीं किया जा सकता। लेकिन आधुनिक शैक्षिक युग में इसे नकारा नहीं जा सकता। प्रत्येक बालक अपनी योग्यताओं, क्षमताओं, रूचि एवं अभिवृत्तियो में अद्वितीय होता है। अतः शिक्षा का परम लक्ष्य होना चाहिये कि प्रत्येक बालक को अपने गुणों व सम्भावनाओं को विकसित करने का अवसर मिले।

बालक के स्वयं चयन से भावनात्मक एवं सौन्दर्यत्मक पक्ष को प्रबलता मिलती है। सहज ज्ञान व अनुभूति के आधार पर चयन करने से आत्मविश्वास व उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है। भूतपूर्व शिक्षा मंत्री बी. शंकरानन्द ने कहा था ''शिक्षा का आशय बच्चों को मात्र साक्षर बनाना ही नहीं है वरन् अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक बनाना है।

उपर्युक्त विवेचन द्वारा लेखन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि शिक्षा के निम्न उद्देश्य निर्धारित किये जाएं-

प्रामाणिक अस्तित्व का निर्माण करना।
स्वतंत्र चयन हेतु बालकों को तैयार करना।
अनुभूतियों के अनुसार व्यक्तित्व का निर्माण।
स्वतंत्रतापूर्वक मूल्यों के चयन हेतु प्रेरित करना।
उत्तरदायित्व का बोध कराना।
व्यक्ति को संघर्षपूर्ण जीवन के लिये तैयार करना।
वैयक्तिकता का विकास करना।
स्वतंत्र एवं उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्ति का निर्माण करना।
मृत्यु के वरण को स्वेच्छा से स्वीकारने वाले निर्भीक मानव का निर्माण करना।

उपर्युक्त शैक्षिक लक्ष्य अस्तित्ववाद के परिप्रेक्षय में आवश्यक समक्ष पड़ने हैं।

पाठ्यक्रम की संकल्पना

विकास की नियति परिवर्तन में संचित है। जिस प्रकार प्राकृतिक वातावरण में परिवर्तन होता रहता है उसी प्रकार मानव स्वभाव तथा व्यवहार में भी। आज हम जिस तथ्य को सर्वमान्य सत्य मान रहे हैं, संभव है कुछ समय बाद वह एकांगी प्रतीत हो। कॉपरनिकस से पहले सभी इस बात पर एकमत थे कि पृथ्वी स्थिर है तथा सूर्य उसके चारों ओर चक्कर लगाता है स्पष्ट है कि विभिन्न क्षेत्रों में निरन्तर विकास हो रहा है। शिक्षा भी समाज का एक अभिन्न अंग है। इसमें पाठ्यक्रम अत्यन्त महत्वपूर्ण अवयव है। क्या पढ़े? कितना पढ़े? कैसे पढ़े? कहां से पढ़े? इसका निर्धारण पाठ्यक्रम में होता है। बालक जब जन्म लेता है जो वह हाड़-मांस का जीवित पुतला होता है। उसके सूक्ष्म शरीर का निर्माण, ज्ञान तथा चेतना का विकास शिक्षा द्वारा होता है। पाठ्यक्रम में भी समय-समय पर परिवर्तन आवश्यक होता है। पाठ्यक्रम-निर्माण स्वयं एक विकासशील विषय है जिसे आवश्यक के अनुरूप बदलना पड़ता है। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का पाठ्यक्रम एकांगी है तथा इसमें परिवर्तन की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

आज आवश्यक है ऐसे पाठ्यक्रम की जो विद्यार्थी को ज्ञान तथा संघर्षमय जीवन की चुनौती हेतु तैयार करे। वातावरण का बोध कराये। जीवन के आदर्शों में वास्तविकता की छाप छोड़े। स्वयं सात्र्र ने कहा था कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को वास्तविक जीवन के लिये तैयार करना है। अतः शिक्षा के आदर्शों में यथार्थ जीवन की छाप आवश्यक है। वास्तविक जीवन में मनुष्य को कौशल एवं व्यवसाय का प्रशिक्षण दिया जाता चाहिये। विषयों का चयन बालक को अपनी रूचि तथा स्वभाव के अनुसा करने देना चाहिये।

आजकल शारीरिक श्रम पर मानसिक श्रम हावी है। हमारे देश में शारीरिक श्रम द्वारा जीविकोपार्जन को हेय दृष्टि से देखा जाता है। पढ़ा लिखा युवा वर्ग मानसिक श्रम द्वारा जीविकोपार्जन में अपना सम्मान तथा राष्ट्रहित में शारीरिक श्रमदान करने में शर्म महसूस करता है। इस दृष्टिकोण में क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यक है। जीवन की तैयारी में शारीरिक श्रम तथा मानसिक श्रम को बराबर का सम्मान मिलना चाहिये।

पाठ्यक्रम का निर्माण मानवीय-चेतना के संदर्भ में नियोजित किया जाना चाहिये। उदाहरण स्वरूप राष्ट्रीय एकरूप पाठ्यक्रम में गणित तथा विज्ञान की अनिवार्यता अनेक उन बालकों का विकास अवरूद्व करती है जिनकी रूचि विज्ञान और गणित में नहीं है। विज्ञान जैसा विषय उन्हें इतना वस्तुनिष्ठ बनने पर मजबूर कर देता है कि अपने 'स्व' से उनका संपर्क भंग हो जाता है। 'सात्र्र' का कहना था कि मानविकी तथा सामाजिक विषयों को पाठ्यक्रम में विशेष रूप से शामिल किया जाना चाहिये क्योंकि ये जगत् की वास्तविकता तथा पीड़ा, व्यथा, प्रेम, घृणा, पाप, मृत्यु आदि से परिचित कराते हैं। इससे व्यक्ति जीवन में आने वाले सुख-दुःख के लिये तैयार हो जायेगा। बालक की रूचि अगर 'विज्ञान' में हैं तो वी उसे चुनने के लिये पूर्णरूप से स्वतंत्र हो। पाठ्यक्रम द्वारा बालक को विज्ञान के गूढ़ समीकरणों में न उलझाकर उसका दृष्टिकोण वैज्ञानिक बनाना चाहिये। प्रत्येक बालक को अपने विकास का अवसर मिलना चाहिये और वह इसके लिये पूर्णरूप से स्वतंत्र हो। पाठ्यक्रम में वह सब शामिल होना चाहिये जो मानव अस्तित्व को बनाये रखने में सहायक हो।

संक्षेप में भावी पाठ्यक्रम निर्माण हेतु लेखक की निम्नलिखित संस्तुतियाँ अस्तित्ववाद के संदर्भ में है-

पाठ्यक्रम इस प्रकार निर्मित हो कि बालक अपने सत्व को पहचान सके तथा अपना अस्तित्व बनाये रखने में समर्थ हो।
पाठ्यक्रम द्वारा संघर्षात्मक जीवन की तैयारी हो तथा बालक इसे चुनौती के रूप में स्वीकार करे।
पाठ्यक्रम ऐसा हो कि बालक मानसिक स्वतंत्रता के बल पर तर्क द्वारा अपनी समस्या का समाधान खोज सके।
पाठ्यक्रम द्वारा बालक को वातावरण का बोध हो।
पाठ्यक्रम व्यक्ति केन्द्रित हो जिससे बालक अपनी रूचि, चेतना व अनुभूति के अनुसार विषयों का चयन कर सके।
पाठ्यक्रम परिवर्तनशील हो। समय-समय पर उसमें अभिनव प्रयास शामिल हों।
पाठ्यक्रम बालक को जीवन की जीवन की वास्तविकताओं से परिचित कराये।
पाठ्यक्रम में मानविकी विषयों को महत्वपूर्ण स्थान मिले।
'मृत्यु का बोध' एक सामान्य सत्य के रूप में पाठ्यक्रम में शामिल हो।
पाठ्यक्रम ऐसा हो जिससे जीवन की निरर्थकता, नैराश्य, चिंता तथा भय की स्थिति से मानव को सचेत किया जा सके।
पाठ्यक्रम द्वारा अंतिम सत्य के रूप में उसे मानव होने का स्पष्ट प्रमाण मिले।
उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यदि पाठ्यक्रम निर्माण किया जाए तो भारतीय शिक्षा को नई दिशा मिल सकती है।

शिक्षण-पध्दति

सुप्रसिध्द दार्शनिक रूसो ने कहा है- बालक का जीवन एक खुली पुस्तक है, जिसे पढ़ना आवश्यक है। अतः भावी शिक्षा का स्वरूप ऐसस होना चाहिये कि बालक अपने उत्तरदायित्व को समझ सके तथा अपने जीवन, समाज आदि देश के प्रति न्याय कर सके।
बालक में स्वतंत्र एवं मौलिक चिंतन का विकास आवश्यक है। अतः शिक्षण विधि इस प्रकार की होनी चाहिये जो विद्यार्थी में सृजनात्मकता एवं रचनात्मकता का विकास करे । शिक्षक इस तथ्य से भली-भाँति परिचित होता है कि उसे अपना ज्ञान-संचय भावी पीढ़ी को सौंपना है। अस्तित्ववादी मानते हैं कि शिक्षक को अपना ज्ञान विद्यार्थी पर थोपना नहीं चाहिये। बल्कि एक कुशल मार्ग-दर्शक के रूप में प्रदान करना चाहिये। शिक्षण के समय छात्रों को पूरी स्वतंत्रता प्रदान की जाए ताकि वह स्वतंत्रता पूर्वक विचार करके अपने भावों को प्रकट करने में समर्थ हो।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्न विधियों द्वारा शिक्षण-विधि को नई दिशा मिल सकती है-

सहज अनुभूति विधि
व्यक्तिगत अनुभव विधि
प्रत्यक्ष विधि
स्वयं अनुभव द्वारा सीखना।

आत्म-अनुशासन

आज हमारे सामने अनुशासनहीनता एक विराट समस्या बन गई है। देश में विप्लव की स्थिति आ गई है। अलगावाद, आतंकवाद, सांप्रदायिक वैमनस्य तथा जातिगत संघर्ष अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया है। इसका समाधान क्या है? स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी जाति का हो, किसी सम्प्रदाय का हो, किसी भी राज्य में रहने वाला हो या किसी भिन्न विचारधारा का हो, सबसे पहले वह एक व्यक्ति है तथा राष्ट्र की इकाई के रूप में एक नागरिक है। इस समस्या का समाधान तभी हो सकता है जब प्रत्येक व्यक्ति अनुशसित होगा। इसके लिये 'स्व' अनुशासन की आवश्यकता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति स्वअनुशसित हो तथा बुरे कृत्यों का स्वयं जिम्मेदार, तो वह बुरे कर्मों में कभी लिप्त नहीं होगा।

निष्कर्ष:

किसी व्यवस्था को आदर्श रूप देने के लिये अनुशासन आवश्यक है। इसके लिये कुछ मानदण्डों का निर्धारण किया जाता है। लेकिन 'सात्र्र' किसी भी आचार-संहिता को अस्वीकार करते है। वह बालक को पूर्ण स्वतंत्र तथा स्वयं चयनकर्ता और उपभोक्ता मानते हैं। बिना आचार-संहिता के अराजकता फैलाने का भय होना स्वाभाविक है। इसका निदान सात्र्र वैयक्तिक चेतना द्वारा प्रस्तुत करते हैं। वैयक्तिक चेतना से स्वतंत्र चयन संभव है। बालक जब स्वतंत्र-चयन अपनी चेतना से करेगा तो शुभ चयन ही करेगा। यदि अशुभ-चयन करेगा तो इसका भोक्ता वह स्वयं होगा। सात्र्र का विचार है कि अशुभ-चयन का भोक्ता मनुष्य स्वयं है क्योंकि चयन के समय वह स्वतंत्र था। अतः अंतिम समय तक पूरी आक्रामकता के साथ उसे अपने अशुभ चयन का परिणाम झेलना होगा।
स्वतंत्र चयन द्वारा ही वैयक्तिक दायित्व उत्पन्न होता है। सात्र्र का विचार है कि स्वतंत्रता से परे कोई नैतिक गुण नहीं होता। अतः पूरव निर्धारित सिध्दान्तों द्वारा वैयक्तिक चेतना को दबाना निम्नतम नैतिकता है। इस प्रकार सर्वोच्च नैतिकता स्वतंत्रता का प्ररतिमान है। स्वतंत्र एवं उत्तरदायित्व पूर्ण व्यवस्था के निर्माण द्वारा अनुशासन लाया जा सकता है।
कुछ विद्वानों को शंका है कि अस्तित्ववादी सात्र्र, शुन्सता, त्रासदी आदि जीवन के विश्व आदि की बातें करते हैं-? क्या इन सब तथ्यों का ज्ञान भी बालक को दिया जाना चाहिये? इस संबंध में लेखन का विचार है कि मृत्यु, निराशा, त्रासदी आदि जीवन के गहन यथार्थ है। अतः इनका ज्ञान व्यक्ति को कराना नितान्त आवश्यक है। सुख और दुःख जीवन के दो पहलू है। सुख को चाहने के साथ दुःख की अवहेलना नहीं की जानी तथा गौतम बुध्द का उदाहरण लिया जा सकता है। गौतम बुध्द ने दुःख से प्रभावित हो आर्य सत्य को खोजा तथा निर्वाण का मार्ग बताया। महात्मा गांधी ने सत्य, अहिंसा तथा दलितों के उत्थान के लिये पूरा तीवन देश को समर्पित कर दिया। भारत-भ्रमण के दौरान भूखे नंगे लोगों के दुःख-दर्द को समझा तथा स्वयं चरखे द्वारा कारते हुये सूत से कपड़ा पहनने का आन्दोलन चलाया। जीवन के जो तथ्य अवश्यम्भावी है उनसे ढर कैसा ? अतः जीवन को पलायनवादी न बनने देने के लिये वास्तविकताओं का ज्ञान शिक्षा द्वारा कराना अत्यंत आवश्यक है।

सन्दर्भ सूची:

1. देखिये राष्ट्रीय शिक्षा-नीति, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1986, भूमिका
2. 14, 15, 16 अक्टूबर, 1972 में राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन सेवाग्राम का तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा उद्घाटन भाषण।
3. शिक्षा की चुनौतीः नीति संबंधी परिप्रेक्ष्य, अगस्त, 1985, पृ. सं. 3।
4. वही, पृ. सं. 8
5. Indian Express (News paper), 21-02-80
6. देखिये '' राष्ट्रीय शिक्षा-नीति'', मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1986, 2.5, 2.6
7. Beimg for himself.
8. Learning by doing.
9. Being-in0himself
10. Being and Nothingness.